वीर अर्जुन

वीर अर्जुन

लेखक
सन्तराम बत्स्य

सुबोध पॉकेट बुक्स

वीर अर्जुन

महाराज पाण्डु के तीसरे पुत्र का नाम था अर्जुन। पाण्डु की दो रानियाँ थीं—कुन्ती और माद्री। कुन्ती के तीन पुत्र थे—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन। माद्री के दो पुत्र थे—नकुल और सहदेव। इस प्रकार पाण्डु के पाँचों पुत्रों में अर्जुन मँझला था। पाण्डु के पाँचों पुत्र पाण्डव कहलाते थे।

जिन दिनों अर्जुन का जन्म हुआ, महाराज पाण्डु हिमालय के शतशृङ्ग नामक भाग में रहते थे। अर्जुन का जन्म फाल्गुन मास में, बहुत ही सुहावने समय में हुआ था।

अर्जुन जैसे वीर पुत्र की प्राप्ति के लिए महाराज पाण्डु और महारानी कुन्ती ने इन्द्र देवता की उपासना की थी। देवताओं के राजा इन्द्र के वरदान से उत्पन्न होने के कारण, वे अर्जुन पर विशेष स्नेह रखते थे।

'महाभारत' के रचनाकार भगवान् वेदव्यास ने लिखा है कि जब अर्जुन का जन्म हुआ तो वहाँ के सब लोगों ने बड़े स्पष्ट शब्दों में यह आकाशवाणी सुनी—"हे कुन्ती, तेरा यह पुत्र देवताओं के सेनापति कार्तवीर्य के समान तेजस्वी, भगवान् शिव के समान पराक्रमी और देवराज इन्द्र के समान अजेय होगा। यह बड़ा यशस्वी, शत्रुओं को जीतनेवाला, भगवान् परशुराम के समान योद्धा, देवताओं का कृपापात्र और अस्त्र-विद्या में पारंगत होगा।"

उस आश्रम के पास रहनेवाले ऋषि-मुनियों को यह आकाश-

वाणी सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। तदनन्तर नगाड़े बजने की ध्वनि के साथ-साथ आकाश से पुष्पवर्षा भी होने लगी। देवता, ऋषि, यक्ष, गन्धर्व और अप्सराएँ भी वहाँ आयीं। ये सब भी अर्जुन के जन्मावसर पर मंगल-आशीर्वाद देने और नाचने-गाने लगे। पर इन सबके दर्शन तो केवल उन तपस्वियों को ही हुए।

इसके बाद माद्री ने भी दो पुत्रों को जन्म दिया। ये पाँचों पाण्डव शुभ लक्षणोंवाले और पूर्णचन्द्र की तरह देखने योग्य थे। उनकी चाल-ढाल सिंह जैसी थी।

जब द्वारका में यदुवंशी वसुदेव को यह शुभ समाचार मिला कि पाण्डु के पुत्र हुए हैं तो उन्होंने सोचा कि वन में महाराज पाण्डु अपने पुत्रों के संस्कार विधिवत् करने की व्यवस्था कैसे करेंगे, इसलिए उन्होंने काश्यप नामक पुरोहित को तथा राज-कुमारों के योग्य अस्त्र और आभूषण, कुन्ती और माद्री के लिए दासियाँ, गहने, कपड़े तथा गौएँ भिजवाईं।

पुरोहित काश्यप ने शतशृङ्ग जाकर पाण्डवों के विधिवत् संस्कार किए। इस आश्रम के पास ही एक राजा सुभ भी रहते थे। वे इन राजकुमारों से बड़ा स्नेह करते थे। उन्होंने पाण्डवों को शस्त्र-शस्त्र चलाने की प्रारम्भिक शिक्षा दी। युधिष्ठिर भाला फेंकने में, भीमसेन गदा चलाने में, अर्जुन धनुष-बाण में, नकुल और सहदेव ढाल-तलवार के युद्ध में विशेष निपुण हुए।

अभी पाण्डु के पाँचों पुत्र छोटे-छोटे ही थे कि महाराजा पाण्डु का स्वर्गवास हो गया। पाण्डु की मृत्यु से शतशृङ्ग में शोक छा गया। उधर जब कुरु-साम्राज्य में यह समाचार सत्यवती और भीष्म ने सुना तो वे भी शोक-सागर में डूब गए।

पाण्डु की दोनों रानियाँ कुन्ती और माद्री पाण्डु की मृत देह के साथ सती होने को तैयार हो गईं। पर पाँचों पाण्डव अभी छोटे थे। इसलिए माद्री ने स्वयं सती होने और कुन्ती से सती

न होने का आग्रह किया। माद्री सती हो गई। पाण्डवों की देख-रेख का सारा भार कुन्ती पर आ पड़ा।

कुन्ती पाँचों पाण्डवों को लेकर हस्तिनापुर चली आई। अब भीष्म उन सबके संरक्षक बने। उस समय सबसे बड़े पाण्डव युधिष्ठिर की अवस्था सोलह वर्ष की थी।

इधर हस्तिनापुर में महाराज धृतराष्ट्र के भी गान्धारी से सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। ये सब कौरव कहलाए। कौरवों में दुर्योधन सबसे बड़ा था।

पाँचों पाण्डव और सौ कौरव हस्तिनापुर में साथ-साथ रहने लगे। खेल-कूद, पढ़ने-लिखने तथा शस्त्र-विद्या में भी वे सब एक-साथ थे।

इन दिनों कृपाचार्य कौरवों-पाण्डवों के गुरु थे।

बचपन में ही भीम और दुर्योधन में नहीं पटती थी। बात यह थी कि भीम सबसे बलवान् था और कौरवों को प्रायः तंग किया करता था। विद्या सीखने में भी पाण्डव कौरवों से आगे ही रहते। इससे कौरवों को बड़ी जलन होती, विशेष रूप से दुर्योधन को। वे पाण्डवों को नीचा दिखाने के लिए सदा प्रयत्न-शील रहते।

एक बार कौरवों ने षड्यन्त्र रचकर जलक्रीड़ा का कार्यक्रम किया। गंगा में देर तक जलक्रीड़ा करते रहे और जब भोजन करने बैठे तो भीम के भोजन में विष मिलाकर उसे खिला दिया। भीम जब विष के प्रभाव से मूर्च्छित हो गया तो उसे जंगली बेलों से बाँध-लपेटकर गंगा की धारा में फेंक दिया।

पानी में ही साँपों ने भीम को काटा जिससे भीम के शरीर में भोजन के विष का प्रभाव कम हो गया। होश आने पर भीम किसी तरह बेलों को तोड़कर पानी से बाहर निकला और हस्तिनापुर आ पहुँचा।

कुन्ती अपने पुत्रों के प्रति दुर्योधन की ईर्ष्या और शत्रुता-पूर्ण व्यवहार को देखकर बड़ी चिंतित हुई।

एक दिन हस्तिनापुर नगर के बाहर मैदान में कौरव और पाण्डव राजकुमार गेंद खेल रहे थे। उनकी गेंद एक सूखे कुएँ में जा पड़ी। युधिष्ठिर उसे निकालने का प्रयत्न करने लगा तो उसकी अँगूठी भी गिर पड़ी। सभी राजकुमार कुएँ के भीतर झाँककर देखने लगे। गेंद और अँगूठी को कैसे निकालें, यह किसी की समझ में नहीं आया।

पास ही बैठा एक ब्राह्मण यह सब तमाशा देख रहा था। वह बोला, "राजकुमारो! तुम क्षत्रिय हो, फिर भी यह छोटा-सा काम तुमसे नहीं हो रहा। क्या तुममें से कोई भी धनुर्विद्या नहीं जानता है? यदि कहो तो मैं इस गेंद को तुरन्त निकाल सकता हूँ।"

"विप्रवर! यदि आप इस गेंद को निकाल सकते हैं, तो कृपा करके निकाल दीजिए। हम तो उसे निकालने में असमर्थ हैं।"

ब्राह्मण ने एक नोकवाली सींक धनुष से छोड़ी तो गेंद में घुस गई। फिर दूसरी सींक उस सींक के सिर पर मारी। वह भी घुस गई। फिर तीसरी, चौथी और पाँचवीं। जब सींक का सिरा कुएँ के ऊपर तक पहुँच गया तो हाथ से पकड़कर खींच लिया। गेंद ऊपर आ गई।

सब राजकुमार आश्चर्य से आँखें फाड़े यह करतब देख रहे थे। फिर द्रोणाचार्य ने इसी विधि से युधिष्ठिर की अँगूठी भी निकाल दी।

सब राजकुमारों ने इस चमत्कारी ब्राह्मण को प्रणाम किया और उसका परिचय पूछा।

राजकुमारों ने यह सारी घटना और उस ब्राह्मण का

परिचय पितामह भीष्म को सुनाया।

धनुविद्या के आचार्य द्रोण को नगर में पाकर भीष्म बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने मन में सोचा कि यदि द्रोण मान जाएँ तो राजकुमारों को अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा उन्हीं के द्वारा पूरी कराई जाए।

उन्होंने आचार्य द्रोण को बुलाकर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उन्हें राजकुमारों का युद्ध-विद्या का शिक्षक नियुक्त कर दिया।

अब आचार्य द्रोण हस्तिनापुर में रहकर कौरवों और पाण्डवों को अस्त्र-विद्या की शिक्षा देने लगे। महाराज धृतराष्ट्र के सारथि का पुत्र कर्ण भी शिक्षार्थी होकर द्रोण के पास आया। आचार्य द्रोण का अपना पुत्र अश्वत्थामा भी राजकुमारों के साथ शिक्षा लेने लगा।

साथ रहते-रहते कर्ण की दुर्योधन से मित्रता हो गई। अब वह भी मित्र दुर्योधन के साथ पाण्डवों से ईर्ष्या-द्वेष करने लगा। धनुविद्या में कर्ण ही एक था जो अर्जुन का मुकाबला कर सकता था। गदायुद्ध में भीम और दुर्योधन लगभग समान थे।

एक बार आचार्य द्रोण ने अपने शिष्यों के निशाना लगाने की परीक्षा लेने के लिए, एक ऊँचे वृक्ष की शाखा पर, बनावटी पक्षी रखवा दिया। इसके बाद उन्होंने सब शिष्यों को बुलाकर उनसे कहा, "राजकुमारो! तुम अपने-अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा करो। मैं एक-एक करके तुम्हारे निशाना लगाने की परीक्षा लूँगा।"

आचार्य की आज्ञानुसार युधिष्ठिर सबसे पहले धनुष पर बाण चढ़ाकर आगे आया। निशाना साधा।

आचार्य ने पूछा, "युधिष्ठिर! क्या तुम्हें वृक्ष की शाखा पर बैठा हुआ पक्षी दिखाई दे रहा है?"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "हाँ गुरुदेव ! मैं उस पक्षी को अच्छी तरह देख रहा हूँ।"

"और वृक्ष ?" द्रोणाचार्य ने पूछा।

"वह भी स्पष्ट दिख रहा है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"मुझे भी देख रहे हो क्या ?" कुछ खीझकर आचार्य द्रोण ने पूछा।

"हाँ गुरुदेव !" युधिष्ठिर ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

द्रोण ने कहा, "तो रहने दो। तुम लक्ष्य को नहीं भेद सकते। एक ओर हट जाओ।"

इसी प्रकार आचार्य ने दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, भीम आदि से पूछा। उन्होंने भी वैसा ही उत्तर दिया। सबको निशाना लगाने में अयोग्य ठहराते हुए आचार्य द्रोण ने अर्जुन को बुलाया। अर्जुन निशाना साधकर खड़ा हुआ तो आचार्य ने वही प्रश्न किया।

उत्तर में अर्जुन ने कहा, "मुझे न तो वृक्ष दिखाई देता है और न शाखा। मुझे तो केवल पक्षी दिखाई देता है।"

अर्जुन का उत्तर सुनकर आचार्य द्रोण बहुत प्रसन्न हुए।

आचार्य ने तीर मारने की आज्ञा दी। अर्जुन ने तीर मारा और वह नकली पक्षी बिंध गया।

सभी राजकुमारों में से केवल अर्जुन इस परीक्षा में सफल हुआ। अर्जुन की इस सफलता से दुर्योधन, कर्ण आदि उससे और भी चिढ़ने लगे।

जब राजकुमारों की युद्ध-विद्या की शिक्षा पूरी हो गई तो आचार्य द्रोण ने भीष्म पितामह को इसकी सूचना दी। महाराज धृतराष्ट्र को भी इसकी सूचना दी गई। फिर महाराज की आज्ञा से राजकुमारों के अस्त्र-शस्त्र-संचालन में अपनी-अपनी योग्यता का प्रदर्शन करने के लिए एक आयोजन किया गया।

एक विस्तृत मैदान में रंगभूमि तैयार की गई। पूर्व-निश्चित दिन को ठीक समय पर महाराज धृतराष्ट्र, भीष्म को आगे करके, सारे मन्त्रियों सहित रंगभूमि में पधारे। माता कुन्ती और गान्धारी तथा अन्य स्त्रियों के बैठने के लिए भी व्यवस्था की गई थी। दर्शकों से सारा स्थान ठसाठस भरा हुआ था। बाजे-गाजे का भी अच्छा प्रबन्ध था।

ज्यों ही प्रदर्शन का समय हुआ, बाजे बजने लगे। इतने में आचार्य द्रोण अपने पुत्र अश्वत्थामा सहित मंच पर पधारे। सफेद धोती, सफेद उत्तरीय और सफेद दाढ़ी-मूँछों के कारण वे बड़े भले लग रहे थे। इसके बाद सारे राजकुमार आए और आचार्य को प्रणाम करके पंक्तिबद्ध हो एक ओर खड़े हो गए और उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। सभी राजकुमार योद्धा की वेश-भूषा में थे।

क्रमशः आचार्य की आज्ञा से सभी अपने कौशल का प्रदर्शन करने लगे। वे कभी घोड़ों पर तो कभी रथ में रंगभूमि के चक्कर लगाने लगे।

दुर्योधन और भीम ने गदायुद्ध का आश्चर्यजनक प्रदर्शन किया।

महाराज धृतराष्ट्र के पास बैठे हुए महात्मा विदुर उन्हें राजकुमारों के करतबों का वर्णन सुनाते जाते थे। आप जानते ही हैं कि महाराज धृतराष्ट्र जन्मान्ध होने के कारण कुछ भी देखने में असमर्थ थे। उधर गान्धारी को कुन्ती सारा हाल सुना रही थी। बात यह थी कि यद्यपि गान्धारी की आँखें ठीक थीं, पर उसने अपने पति धृतराष्ट्र के अन्धा होने के कारण अपनी आँखों पर पट्टी बाँध रखी थी। उसका कहना था कि जो सुख मेरे पति को प्राप्त नहीं है, वह सुख मुझे भी नहीं चाहिए।

इसके बाद आचार्य द्रोण ने बाजे बजाने बन्द करवा दिए

और दर्शकों को सम्बोधित करके बोले, "आप लोगों ने मेरे शिष्यों की युद्ध-कला को देखा। अब आप मेरे सबसे योग्य शिष्य अर्जुन का कौशल देखें।"

आचार्य की आज्ञा से अर्जुन रंगभूमि में आया। उसने अंगुलियों पर लोहे के चमड़े के दस्ताने चढ़ाए हुए थे, कवच पहन रखा था और धनुष हाथ में था।

सभी दर्शकों की आँखें अर्जुन पर गड़ गईं। आचार्य का संकेत मिलने पर फिर से बाजे बजने लगे। शंखध्वनि से आकाश भर गया।

दर्शक आपस में अर्जुन की प्रशंसा करने लगे। माता कुन्ती पुत्र की प्रशंसा सुनकर प्रसन्नता से फूली न समाई।

अब अर्जुन ने अपनी युद्ध-विद्या का प्रदर्शन शुरू किया। सबसे पहले उसने आग्नेय अस्त्र के द्वारा आग पैदा की। फिर वरुण अस्त्र के द्वारा उस आग को क्षणभर में बुझा दिया। उसके बाद वायव्य अस्त्र चलाकर बड़े जोर की आँधी पैदा कर दी। पर्जन्य नामक अस्त्र चलाकर आकाश में बादलों की घनघोर घटा पैदा कर दी। फिर भौमास्त्र से धरती में बड़ी भारी दरार बना दी और पर्वतास्त्र से पर्वत को गिरा दिया।

दर्शक मौन, स्तब्ध, चकित और कुछ भयभीत होकर आँखें फाड़े इन प्रदर्शनों को देखते रहे।

तदनन्तर शब्दवेधि अस्त्र चलाकर अर्जुन ने इन सबका लोप कर दिया।

अब अर्जुन ने दूसरा प्रदर्शन प्रारम्भ किया। तलवार, गदा और धनुष-बाण के अनेक करतब दिखाए। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तु को बींधना, एक-साथ कई-कई अस्त्रों का प्रयोग, फुर्ती ऐसी कि पलक झपकते इधर से उधर पहुँच जाए। दर्शकों की आँखों की पकड़ में न आए। दर्शक यही सोचते रहे कि अभी तो ऐसा था

फिर अभी वैसा कैसे हो गया ! अभी तो हम वह प्रदर्शन देख रहे थे और अभी यह नया प्रदर्शन दिखाई दे रहा है। बिजली जैसी तेज़ी से अर्जुन ने तरह-तरह के करतब दिखाकर दर्शकों को मुग्ध कर दिया। वह एक प्रदर्शन की प्रशंसा में वाह-वाह कर रहे होते कि दूसरे प्रदर्शन के लिए वाह-वाह करने लगते। तालियों और वाह-वाह से सारी सभा गूंजती रही।

अर्जुन की युद्ध-कला के प्रदर्शन के बाद कार्यक्रम समाप्त ही होने वाला था कि रंगभूमि के बड़े द्वार पर कुछ होहल्ला, कुछ गड़बड़ होने लगी। सबकी आँखें उसी ओर फिर गईं। पाण्डवों के बीच घिरा आचार्य द्रोण और कौरव-समूह में खड़ा अश्वत्थामा भी उस ओर देखने लगा। द्वार के पास खड़े लोगों की भीड़ को चीरता-सा कर्ण रंगभूमि की ओर बढ़ा। दिव्य कवच और कुण्डलों से उसकी शोभा देखते ही बनती थी। सूर्य की तरह दमकते मुखमण्डलवाला कर्ण रंगभूमि के बीचों-बीच जा खड़ा हुआ। उसने एक गम्भीर दृष्टि सारे दर्शकों पर डाली। फिर आचार्य द्रोण को तिरस्कार के साथ प्रणाम किया। फिर अर्जुन को सम्बोधित करके कहा, "अर्जुन ! तुम समझते हो कि तुमने यह करतब दिखाकर दर्शकों से जो वाहवाही लूटी, वैसी वाहवाही तुम्हारे सिवा किसी को नहीं मिलती ! पर यह तुम्हारी भूल है। मैं तुमसे भी अधिक और अच्छे ऐसे करतब दिखा सकता हूँ।"

कर्ण की ये बातें सुनकर दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अर्जुन को दर्शकों की वाहवाही मिलने से कुढ़ रहा था। दूसरी ओर दर्शकों से प्रशंसा पाकर अर्जुन को जो प्रसन्नता हुई थी, वह जाती रही। अर्जुन को कर्ण द्वारा चुनौती मिलने से लज्जा और क्रोध उत्पन्न हुआ।

अब कर्ण अपने करतब दिखाने लगा। जो-जो करतब अर्जुन

ने दिखाए थे, सभी कर्ण ने भी कर दिखाए। यह सब देखकर दर्शकों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

इस समय दुर्योधन की प्रसन्नता की सीमा नहीं थी। वह आगे बढ़ा और उसने कर्ण को छाती से लगाकर उसका अभिनन्दन किया।

तब कर्ण उत्साह में आकर बोला, "मैंने वे सभी करतब कर दिखाए हैं, जो अर्जुन ने दिखाए थे। अब इस बात का निर्णय करने के लिए कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है, द्वन्द्व युद्ध होना चाहिए।"

अर्जुन ने क्रोध से भरकर कहा, "ओ रथ हांकनेवाले के पुत्र कर्ण! तुम बिना बुलाए यहां आए हो और बिना पूछे बढ़-चढ़कर बातें बना रहे हो। इसके दण्डस्वरूप मैं तुम्हें यमलोक का रास्ता दिखाता हूं।"

कर्ण बोला, "यह रंगभूमि है। इसमें कोई भी वीर योद्धा आ सकता है। तुम बुलानेवाले और निकालनेवाले कौन हो? बातें क्या बना रहे हो, मैं तो तुमसे निर्णायक द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूं। बोलो, तैयार हो न?"

द्रोणाचार्य की आज्ञा से अर्जुन कर्ण से भिड़ने को तैयार हो गया। उधर दुर्योधन ने कर्ण की पीठ ठोकी। दर्शकों में से द्रोण, पाण्डव और कृपाचार्य अर्जुन के पक्षधर बन गए, और कौरव कर्ण के। अश्वत्थामा भी कर्ण का हिमायती बना।

कृपाचार्य इस द्वन्द्व युद्ध को टालना चाहते थे। उन्होंने कर्ण से कहा, "हे कर्ण! जिसके कुल और शील का कुछ पता न हो, उसके साथ राजकुमार को युद्ध करना मना है। सभी जानते हैं कि सारथि ने तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया है। तुम वास्तव में किसकी सन्तान हो, इसका पता न तो तुम्हें है और न तुम्हें पालनेवालों को।"

कृपाचार्य की बात सुनकर मारे लज्जा के कर्ण का सिर नीचा हो गया। पर दुर्योधन को कृपाचार्य की बात नहीं जँची। वह बोला, "आचार्य, वीरों की सदा वीरता देखी जाती है, जात-पाँत नहीं। और यदि अर्जुन राजा या राजकुमार से ही युद्ध करना चाहता हो तो मैं कर्ण को अंगदेश का राज्य देकर राजा बनाता हूँ।" यह कहकर दुर्योधन ने सोने का सिंहासन मँगवाया और कर्ण को उस पर बिठाकर ब्राह्मणों द्वारा राज्याभिषेक करवा दिया।

दुर्योधन ने कर्ण को अंग देश का राजा बनाकर उसे अपमान से बचाया था। इसलिए कर्ण जीवनभर दुर्योधन के इस उपकार को मानता रहा। कर्ण मृत्यु तक दुर्योधन की ओर से पाण्डवों के साथ लड़ता रहा।

उधर सारथि अधिरथ को भी पता चल गया कि अर्जुन और कर्ण में द्वन्द्व युद्ध होनेवाला है। यह अधिरथ ही एक प्रकार से कर्ण का पिता था। इसी ने कर्ण को पाला-पोसा था। वह भागा-भागा घबराया हुआ रंगभूमि में पहुँचा। कर्ण ने अपने पालक पिता को आया देखकर उन्हें प्रणाम किया। अधिरथ ने जब देखा कि मेरा पुत्र ठीक है, अभी तक लड़ाई-भिड़ाई की कोई बात नहीं है तो उसे सन्तोष हुआ। उसने कर्ण को गले लगाया और आशीर्वाद दिया।

यह देखकर भीमसेन ने कुछ बहुत ही कड़वी बातें कर्ण को कहीं। वह बोला, "सूतपुत्र कर्ण! हमने सोचा था कि आज अर्जुन तुम्हें अवश्य यमलोक पहुँचा देगा। परन्तु हमारी यह आशा पूरी होती नहीं दिखाई देती। तुम न तो राज्यसिंहासन पर बैठने के अधिकारी हो और न ही यह तुम्हें शोभा देता है। तुम्हारे कुल में घोड़ों की रास थामने का काम होता आया है और वही तुम्हारे करने योग्य भी है।"

भीमसेन की बात सुनकर दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया। वह बोला, "कौन श्रेष्ठ है, इसका निर्णय युद्ध ही कर सकता है। जिसकी भुजाओं में बल हो, वह आगे आए।"

साँझ हो चली थी। इसलिए आज का कार्यक्रम स्थगित हुआ।

कर्ण को अपना मित्र बनाकर दुर्योधन को तो खूब प्रसन्नता हुई, किन्तु युधिष्ठिर को चिन्ता हुई। वह जानता था कि कर्ण वीर और कुशल योद्धा है। उसके कौरव-पक्ष में चले जाने से पाण्डवों के लिए भविष्य में भय हो सकता था।

गुरु-दक्षिणा

कौरवों-पाण्डवों को आचार्य द्रोण ने शस्त्रास्त्र-विद्या सिखा दी। उनकी शिक्षा पूरी हुई। शिक्षा पूरी होने पर एक समारोह मनाया जाता था। इसका नाम था समावर्तन। इसके बाद ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। शिक्षा समाप्त करने पर शिष्य गुरु को मुँहमाँगी गुरु-दक्षिणा देते थे।

शिष्यों—कौरवों-पाण्डवों को गुरु-दक्षिणा देने के लिए प्रस्तुत देखकर आचार्य द्रोण ने कहा, "हे प्रिय शिष्यो! आप सब पांचाल देश के राजा द्रुपद को युद्ध में हराकर और बन्दी बनाकर मेरे पास ले आओ। इसी को मैं गुरु-दक्षिणा समझूँगा। आप सबने मुझसे सम्मिलित रूप से युद्ध-विद्या सीखी है। अतः इस युद्ध में भी आप सम्मिलित रूप से भाग लें।"

गुरु की आज्ञा पाकर राजपुत्रों ने अपने-अपने शस्त्रास्त्र सँभाले। वे राजा द्रुपद पर आक्रमण करने के लिए हस्तिनापुर से चल पड़े। कर्ण और अपने भाइयों को लेकर दुर्योधन सबसे आगे बढ़ा। वह चाहता था कि पहले पहुँचकर और आक्रमण करके राजा द्रुपद को बन्दी बना लिया जाए। ऐसा करके वह

पाण्डवों को नीचा दिखाकर यशस्वी बनना चाहता था।

अर्जुन दुर्योधन की इस चाल को समझ गया। उसने आचार्य द्रोण को बताया। उन्होंने सुझाव दिया कि इसे आगे जाने दो और तुम सब लोग पीछे ही रहो। पाण्डवों ने ऐसा ही किया।

पांचाल देश के गुप्तचरों ने राजा द्रुपद को बताया कि द्रोण के शिष्य कौरव-पाण्डव-राजकुमार पांचाल प्रदेश पर आक्रमण करने के लिए बढ़े चले आ रहे हैं। यह समाचार सारी राजधानी में फैल गया और आक्रमण का सामना करने की तैयारी होने लगी। सेनाओं को सुसज्जित होकर आक्रमण रोकने की आज्ञा दी गई। पांचाल के नागरिक भी जी-जान से आक्रमण रोकने के लिए सेना की सहायता को निकल पड़े। राजा द्रुपद ने स्वयं सेना की बागडोर संभाली। नगर के बाहर सेना ने अपनी मोर्चे-बन्दी कर ली।

ज्योंही दुर्योधन ने आक्रमण किया, पहले से तैयार पांचाल सेना ने उसका मुंह-तोड़ उत्तर दिया। पांचाल सेना ने दुर्योधन, कर्ण आदि को घेर लिया। अनेक कौरव घायल होकर पीछे हट गए। सिर मुंडाते ओले पड़े। शिक्षा पूरी करने के बाद पहले-पहल युद्ध किया और उसमें भी मुंह की खाई।

कौरव वीर किसी तरह भाग खड़े होने की बात सोच रहे थे कि पीछे से पाण्डव भी आ पहुंचे। अब तो दुर्योधन की जान में जान आई। पाण्डव वीरों ने पांचाल सेना से घमासान युद्ध प्रारम्भ कर दिया। भीम ने अपनी गदा के प्रहार से, अर्जुन ने अपने तीखे बाणों से और नकुल-सहदेव ने तलवार के वारों से पांचाल सेना को चीर डाला।

अर्जुन मार-काट करता हुआ सीधा राजा द्रुपद की ओर बढ़ने लगा। उसने क्रमशः उनके अंगरक्षकों, सारथि और घोड़ों को तीरों का निशाना बनाया। अन्त में वह द्रुपद से जा भिड़ा।

दोनों में घोर युद्ध होने लगा। द्रोण के प्रिय शिष्य अर्जुन के सामने द्रुपद की एक न चली। वे अपने को अधिक देर तक बचा न सके। अर्जुन के बाणों से राजा द्रुपद का शरीर क्षत-विक्षत हो गया। वे विवश हो गए। धनुष उनके हाथ से गिर पड़ा। अर्जुन ने झपटकर उन्हें बन्दी बना लिया। द्रुपद के पकड़े जाने पर कौरव पांचाल सेना को मारने-काटने लगे। जो पहले द्रुपद के हाथों पिट चुके थे, वे अब उसका बदला ले रहे थे। अर्जुन ने व्यर्थ की मार-काट को बन्द करवा दिया। वह बोला, "हम गुरु जी की आज्ञा का पालन करने ही यहाँ आए हैं। राजा द्रुपद से हमारा कोई वैर-विरोध नहीं है।"

बन्दी बनाए हुए राजा द्रुपद को आचार्य द्रोण के सामने ले-जाकर खड़ा कर दिया गया। कुमार बोले, "आचार्यवर! आपकी गुरुदक्षिणा प्रस्तुत है।"

राजा द्रुपद से आचार्य द्रोण ने कहा, "गुरुकुल में हम एक-साथ पढ़े थे। उसी बालपन की मित्रता के कारण एक बार तुम्हारे पास गया था। तुमने भरी सभा में मेरा अपमान किया था। तुमने कहा था कि एक राजा और निर्धन ब्राह्मण में मित्रता कैसे हो सकती है?"

राजा द्रुपद का घमण्ड चूर-चूर हो चुका था। उसकी नजरें नीची हो गई थीं और मुंह से एक भी शब्द नहीं निकल रहा था।

आचार्य द्रोण ने कहा, "राजा द्रुपद! डरो मत! मैं तुम्हें प्राणदण्ड नहीं दूंगा। ब्राह्मण स्वभाव से ही दयालु होते हैं। फिर तुम तो मेरे बचपन के साथी हो। मैं तो बचपन की तरह आज भी तुम्हारे साथ मित्रता रखना चाहता हूँ। पर मुझ निर्धन ब्राह्मण के साथ तुम मित्रता रखना नहीं चाहते थे। मैंने सोचा कि कोई उपाय करूं जिससे हम दोनों एक-समान हो जाएं ताकि

फिर से मित्र बन सकें। बस, इसीलिए मैंने तुम्हें पकड़वाया है। अब तुम्हारा आधा राज्य मैं तुम्हें वापस देता हूँ और आधा अपने पास रखता हूँ। अब हम दोनों बराबर के हो गए। इसीलिए तुम्हें मुझसे मित्रता करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए।"

द्रोणाचार्य की बात मान लेने के सिवा द्रुपद के पास चारा ही क्या था?

धृतराष्ट्र की चिन्ता

पाण्डवों की शूरवीरता और प्रजा में उनके प्रति प्रेम को देखकर धृतराष्ट्र को चिन्ता सताने लगी। उन्हें लगा कि ये पाँच ही मेरे सौ पुत्रों से सब बातों में बढ़-चढ़कर है। धृतराष्ट्र के मन में बड़ी दुविधा थी। वे एक ओर तो चाहते थे कि राज्य उनके पुत्रों को मिले। दूसरी ओर वे यह भी समझते थे कि पाँचों पाण्डव भी राज्य के उत्तराधिकारी हैं।

प्रजा युधिष्ठिर की सत्य और धर्म के प्रति अटूट श्रद्धा से और सबसे बड़ा होने के कारण युधिष्ठिर को ही राजा बनाना चाहती थी। दुर्योधन को इस बात का पता लग गया था। उसने बूढ़े और अन्धे राजा धृतराष्ट्र के कान भरने शुरू कर दिए। बूढ़े धृतराष्ट्र को समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें।

अब दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि और मित्र कर्ण के साथ सलाह करके पाण्डवों को राजधानी से दूर भिजवाने का षड्यन्त्र रचा। इसके लिए उन्होंने धृतराष्ट्र से अनुमति चाही। धृतराष्ट्र ने कहा कि ऐसा करने से प्रजा बिगड़ उठेगी। अन्त में दुर्योधन ने पुत्रों की ममता में फँसे धृतराष्ट्र को मना ही लिया।

इस तरह पाण्डवों को वारणावत नामक नगर में भेजने की योजना बनी। इससे पहले दुर्योधन ने वहाँ लाख का महल बना रखा था। उस महल में पाण्डवों को जीवित जला देने का पक्का

षड्यन्त्र दुर्योधन ने रचा था। किसी तरह महात्मा विदुर को भी दुर्योधन के षड्यन्त्र का पता लग गया। उन्होंने युधिष्ठिर को संकेत से लाख-गृह बता दिया।

अन्त में माता कुन्ती सहित पाण्डव उसी लाक्षागृह में जाकर ठहरे और एक सुरंग बनाकर उसके रास्ते चुपचाप भाग निकले। लाक्षागृह को उन्होंने स्वयं आग लगा दी।

पाण्डव वेश बदलकर घूमते-फिरते एकचक्रा नामक नगरी में जा पहुँचे और एक ब्राह्मण के घर रहने लगे। फिर वहाँ से वे पांचाल देश की ओर चल दिये। पांचाल नगर में पहुँचकर एक कुम्हार के घर उन्होंने डेरा डाला।

पांचाल देश के राजा द्रुपद की बेटी द्रौपदी का स्वयंवर होनेवाला था। राजा द्रुपद ने स्वयंवर के लिए बड़ी कड़ी शर्त रखी थी। आकाश में खम्भे से लटकता हुआ एक चक्कर था जो लगातार घूम रहा था। उसमें छेद था। नीचे धरती में एक जलकुण्ड बना था। उस जलकुण्ड में परछाईं को देखकर छेद को बींधना था। यह कार्य पांच बाणों में जो वीर कर दिखाता, उसी के साथ द्रौपदी का विवाह होता।

इस स्वयंवर में अनेक राजा और राजकुमार आए हुए थे। दुर्योधन आदि कौरव, भगवान् कृष्ण और दूसरे कितने ही राजा सभा-मण्डप में उपस्थित थे। द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न ने स्वयंवर की शर्त सबको सुना दी।

बारी-बारी सभी राजाओं और राजकुमारों ने निशान को बींधना चाहा, पर सफलता नहीं मिली। पाँचों पाण्डव ब्राह्मण-वेश में वहाँ बैठे हुए थे, जब अर्जुन ने देखा कि कोई भी क्षत्रिय वीर लक्ष्य को बींधने में सफल नहीं हुआ तो उनसे रहा नहीं गया। वह उठा, उसने धनुष उठाया और उस पर बाण चढ़ाकर उसने निशाने को बींध दिया।

एक ब्राह्मण वेशधारी द्वारा ऐसा अद्भुत निशाना लगाने पर सारी सभा में खलबली मच गई। उधर द्रौपदी ने वरमाला अर्जुन के गले में डाल दी।

क्षत्रिय राजा इस बात पर बहुत लाल-पीले हुए कि एक ब्राह्मण क्षत्रिय-कन्या को स्वयंवर से जीतकर ले-जा रहा है। उन्हें क्या पता था कि यही धनुर्धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन है! जब राजा लोग गड़बड़ मचाने लगे तो पाँचों पाण्डवों ने उन्हें मार-मारकर भगा दिया।

राजा द्रुपद ने राजोचित धूमधाम के साथ द्रौपदी का विवाह कर दिया। उसे पता लग गया था कि निशाना बींधनेवाला व्यक्ति कोई ब्राह्मण नहीं, पाण्डव वीर अर्जुन है।

राज्य की प्राप्ति

जब दुर्योधन आदि को पता लगा कि पाण्डव जीवित हैं तो उनके मन में बड़ा दुःख हुआ। वे तो यही समझे बैठे थे कि पाण्डव लाख के महल में जल चुके हैं। और जब कौरवों को यह पता लगा कि द्रौपदी को स्वयंवर में जीतनेवाला अर्जुन ही था, तब तो उन्हें और भी धक्का लगा। राजा द्रुपद के उनका सम्बन्धी बन जाने से पाण्डवों की शक्ति और भी बढ़ गई थी।

दुर्योधन, शकुनि आदि ने फिर धृतराष्ट्र को उकसाना शुरू किया, पर धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आधा राज्य सौंप देने में ही अपना कल्याण समझा। महात्मा विदुर को पांचाल देश भेजकर, धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को बुला लिया।

पाण्डवों के आने पर धृतराष्ट्र ने उन्हें आधा राज्य देकर खाण्डवप्रस्थ नामक स्थान में रहने को कहा। पाण्डवों ने आज्ञा का पालन किया और खाण्डवप्रस्थ में 'इन्द्रप्रस्थ' नामक एक नगर बसाया। इस नगर को ही उन्होंने अपनी राजधानी

बनाया।

यहाँ पाण्डवों के दिन सुख से बीतने लगे। इन्हीं दिनों अर्जुन से कुछ भूल हो गई। उस भूल का दण्ड भोगने के लिए अर्जुन १२ वर्ष वनवास भोगने के लिए निकल पड़ा। घूमते-घूमते अर्जुन द्वारका जा पहुँचा। द्वारका के राजा श्रीकृष्ण अर्जुन के मित्र थे। यहाँ अर्जुन का खूब स्वागत-सत्कार हुआ। श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा विवाह-योग्य थी। श्रीकृष्ण चाहते थे कि बहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हो तो अच्छा है। और यही हुआ भी। सुभद्रा का विवाह अर्जुन से हो गया।

खाण्डव वन-दहन

एक दिन श्रीकृष्ण और अर्जुन यमुना में स्नान करके आ रहे थे। वहाँ पर अग्नि देवता ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुए। वे बोले, "मैं अग्निदेव हूँ। मुझे इस समय बड़ी भूख लगी है। परन्तु इसमें एक कठिनाई है। इन्द्रदेव का मित्र तक्षक खाण्डव वन में रहता है। इसलिए मैं ज्यों ही वन को जलाने लगूँगा, इन्द्रदेव वर्षा बरसाकर मुझे बुझा देंगे। अतः आप दोनों इस कार्य में मेरी सहायता करें।"

अर्जुन ने कहा, "अग्निदेव! हम आपकी सहायता करने के लिए तैयार हैं, परन्तु कठिनाई यह है कि हमारे पास इतने बढ़िया अस्त्र-शस्त्र नहीं हैं कि हम इन्द्रदेव का सामना कर सकें। यदि आप हमें बढ़िया-बढ़िया शस्त्रास्त्र प्रदान करें तो हम आपकी सहायता कर सकते हैं।"

अर्जुन की बात सुनकर अग्नि ने वरुण देव से लेकर गाण्डीव धनुष, कभी खाली न होने वाला 'अक्षय तूणीर', और 'कपिध्वज' नामक एक रथ उन्हें लाकर दे दिया। इसके अतिरिक्त 'सुदर्शन' नामक एक चक्र उन्होंने श्रीकृष्ण को दिया।

शस्त्रास्त्र पाकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर उन दोनों ने अग्निदेव को कहा कि आप खाण्डव वन को भस्म कर सकते हैं। फिर तो अग्निदेव खाण्डव वन को जलाने लगे। जो जीव-जन्तु आग से भागकर बाहर निकलते, उन्हें श्रीकृष्ण और अर्जुन मार डालते। इन्द्रदेव ने अपने मित्र तक्षक के कुटुम्ब को बचाने का बहुत प्रयत्न किया, पर अर्जुन ने उनकी एक न चलने दी।

अग्निदेव के इस प्रकोप से सारा खाण्डव वन जलकर राख हो गया। केवल छः प्राणी बचे। ये थे तक्षक, मयासुर और मंदपाल नामक मुनि के चार पुत्र जो पक्षियों के रूप में उस वन में रहा करते थे। जब अग्निदेव प्रसन्न होकर खाण्डव वन से चले गए तो मयासुर श्रीकृष्ण और अर्जुन के पास आकर बोला, "आपने कृपा कर मुझे प्राणदान दिया है। मैं इस उपकार के बदले आपको कुछ सेवा करना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं क्या सेवा करूँ?"

श्रीकृष्ण बोले, "मयासुर! तुम महाराज युधिष्ठिर के लिए एक ऐसा सभा-भवन बनाओ जैसा आज तक कहीं न बना हो।"

मयासुर ने इन्द्रप्रस्थ में एक अनोखा सभा-भवन तैयार कर दिया। इस सभा-भवन में प्रवेश का कार्यक्रम बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। प्रवेश के समय देवर्षि नारद भी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने महाराज युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने का सुझाव दिया।

बाद में धर्मराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का पक्का निश्चय कर लिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने उनके विचार का समर्थन किया, किन्तु जरासन्ध को जीतना कठिन बताया। अर्जुन के आश्वासन देने पर युधिष्ठिर तैयार हो गए। जरासन्ध का

जीतने के लिए श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन उसके पास पहुँचे। भीमसेन ने द्वन्द्वयुद्ध में जरासन्ध को पछाड़ दिया और उसकी एक टाँग को पैर से दबाकर और दूसरी को दोनों हाथों से पकड़कर चीर दिया।

जरासन्ध ने जिन राजाओं को कैद कर रखा था, उन सबको छोड़ दिया गया। सब राजाओं ने युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार कर ली और अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट में दीं।

जरासन्ध के पुत्र सहदेव को राजगद्दी पर बिठाकर पाण्डव दिग्विजय के लिए निकल पड़े।

दिग्विजय करके जब लौटे तो यज्ञ की तैयारी होने लगी। निश्चित समय पर देश-देशान्तर से ऋषि-मुनि, ब्राह्मण और राजा इन्द्रप्रस्थ में पधारने लगे। हस्तिनापुर से कौरव भी आए।

अब प्रश्न पैदा हुआ कि सारे राजाओं में किसकी पूजा की जाए? पितामह भीष्म के कहने पर युधिष्ठिर ने भगवान श्री कृष्ण की पूजा की। इसपर चेदिदेश का राजा शिशुपाल बहुत बिगड़ा। वह श्रीकृष्ण को तरह-तरह की कड़वी बातें कहने लगा। जब श्रीकृष्ण ने देखा कि शिशुपाल यज्ञ में विघ्न डालने पर तुला हुआ है तो सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट डाला। फिर तो यज्ञ का कार्य निर्विघ्न पूरा हो गया।

मयासुर द्वारा बनाया हुआ पाण्डवों का सभा-भवन विचित्र था। उसकी कारीगरी और शोभा निराली थी। इस भवन के स्थल में जल का और जल में स्थल का भ्रम होता था। दुर्योधन उस भवन को बड़े ध्यान से देख रहा था। एक जगह दुर्योधन स्थल को जल समझकर, अपनी धोती कुछ ऊपर उठाकर चलने लगा। एक दूसरी जगह जल को थल समझकर वह धड़ाम से गिर पड़ा और भीग गया। देखनेवाले जोर से हँस पड़े।

पाण्डवों की सम्पत्ति, सभा-भवन, राजसूय यज्ञ और मान-

बड़ाई को देखकर दुर्योधन मन में जलने लगा। उसे लगा कि वह पाण्डवों की तुलना में कुछ नहीं है। उसने अपने मामा शकुनि से सलाह करके पाण्डवों को नीचा दिखाने की योजना बनाई। शकुनि बड़ा धूर्त और नीच स्वभाव का था। वह जानता था कि युधिष्ठिर में जुआ खेलने का भारी अवगुण है। स्वयं वह जुए में छल-कपट करने में बड़ा चतुर था।

कौरवों ने युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए बुला भेजा। जुए के खेल में महाराज युधिष्ठिर हारते गए। इस हार में शकुनि की चालाकी और बेईमानी भी बड़ा कारण था। युधिष्ठिर ने सब-कुछ हार दिया। सारी धन-सम्पत्ति और सारा राज्य भी। उन्होंने चारों भाइयों को भी दाँव पर लगा दिया और हार गये। फिर अपने-आपको भी हार गये। अन्त में युधिष्ठिर ने द्रौपदी को भी दाँव पर लगा दिया। सभा में बैठे अनेक लोगों ने युधिष्ठिर को ऐसा करने से रोका, पर उनकी तो बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी। अन्त में युधिष्ठिर द्रौपदी को भी हार गए।

दुर्योधन ने दुःशासन को भेजकर रनिवास से द्रौपदी को सभा में बुला भेजा। जब द्रौपदी ने आने से इनकार किया तो वह उसे बालों से पकड़कर खींचता हुआ सभा में ले आया।

पाँचों पाण्डव इस अपमान को विष के चूँट की तरह पी गए। कौरवों ने पाण्डवों के कीमती वस्त्र और गहने भी उतार लिए। अन्त में वे द्रौपदी की साड़ी को खींचने पर उतारू हो गए। इस घोर विपत्ति में द्रौपदी ने भगवान् कृष्ण को पुकारा। योगिराज श्रीकृष्ण की कृपा से द्रौपदी की लाज बची।

यह सब अन्याय और अत्याचार भीमसेन से सहन नहीं हुआ। उसने प्रतिज्ञा की जिन भुजाओं से केश और साड़ी खींचकर दुःशासन ने द्रौपदी का अपमान किया है, मैं उन भुजाओं को

उखाड़ फेंकूँगा और दुर्योधन की टांग को भी चीर डालूंगा।

अन्त में महात्मा विदुर के समझाने से राजा धृतराष्ट्र ने द्रौपदी को स्वतन्त्र करा दिया और उसे कुछ माँगने को भी कहा। द्रौपदी ने पाँचों पाण्डवों को स्वतन्त्र कर देने की प्रार्थना की। तब धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को भी स्वतन्त्र करा दिया और उनका जीता हुआ राज्य भी लौटा दिया।

फिर तो द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डव अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थ को लौट गए।

पाण्डवों का वनवास

दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि को इस बात से बड़ा दुःख हुआ कि राजा धृतराष्ट्र ने जुए में जीता हुआ सब-कुछ पाण्डवों को लौटा दिया। उन्होंने फिर सलाह करके युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए बुला भेजा। जब किसी के बुरे दिन आते हैं तो उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। पाण्डवों के भी बुरे दिन आने-वाले थे। वे फिर जुआ खेलने के लिए आ गए। इस बार भी शकुनि की चालाकी से उनकी हार-पर-हार होने लगी। अन्तिम दाँव इस बात पर लगा कि यदि इस बार भी युधिष्ठिर हार गए तो उन्हें बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास का दण्ड भोगना पड़ेगा। यदि अज्ञातवास के दिनों में वे पहचान लिए गए तो नये सिरे से बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञात-वास भोगना होगा। पाण्डव यह दाँव हार गए और तपस्वियों का वेश बनाकर जंगल की ओर चल दिए। द्रौपदी भी उनके साथ चली। माता कुन्ती को उन्होंने महात्मा विदुर के पास छोड़ दिया।

अर्जुन की तपस्या

एक दिन युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा, "भैया, यह तो निश्चित-सा ही है कि वनवास के बाद हमें युद्ध करना पड़ेगा। कौरव-पक्ष में पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा आदि शस्त्रास्त्र-विद्या में बड़े कुशल हैं। उन्हीं के बलबूते पर दुर्योधन हमसे वैर ठाने हुए है। इन वीरों को हराने के लिए तुम्हें विशेष प्रयत्न करना होगा। मेरा विचार है कि तुम तपस्या द्वारा इन्द्र आदि देवताओं को प्रसन्न करके उनसे दिव्य-अस्त्रों को प्राप्त करो।"

युधिष्ठिर की सलाह मानकर अर्जुन तपस्या करने के लिए उत्तर दिशा की ओर चल दिया। हिमालय के समीपवर्ती इन्द्र-कील नामक पर्वत-शिखर पर जाकर अर्जुन ने देवाधिदेव महादेव की आराधना प्रारम्भ कर दी। चार मास की कठोर तपस्या से भगवान महादेव किरात का रूप बनाकर और माँ पार्वती किराती के रूप में अर्जुन के पास पहुँचे। इसी समय महादेव की इच्छा से एक दानव ने जंगली सूअर का रूप बनाकर तपस्या कर रहे अर्जुन पर आक्रमण कर दिया। अर्जुन ने सूअर को बाण मारा। इसी समय किरात वेशधारी महादेव ने भी सूअर को बाण मारा। दोनों के बाण एक-साथ सूअर को लगे। किरात और अर्जुन आपस में इस बात के लिए झगड़ने लगे कि तुमने मेरे शिकार पर बाण क्यों मारा? होते-होते दोनों में युद्ध होने लगा। अर्जुन के प्रहारों का किरात पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। अन्त में दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा। किरात ने अर्जुन को धरती पर पटक दिया। होश आने पर अर्जुन भगवान् महादेव का ध्यान करने लगे तो उन्हें ध्यान में किरात के दर्शन हुए। अब तो अर्जुन भी समझ गया कि किरात के वेश में स्वयं महादेव ही उसके सामने खड़े हैं। अर्जुन किरात के चरणों में

गिर पड़ा और क्षमा माँगने लगा। महादेव भी अर्जुन के पराक्रम से पहले ही प्रसन्न थे। बोले, "मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। जो वर माँगोगे वही दूँगा।"

अर्जुन ने विनयपूर्वक कहा, "देवाधिदेव, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे ऐसे दिव्य-अस्त्र प्रदान कीजिए, जिसकी मार खाली न जाए, जिनके कारण कोई भी शत्रु मेरे सामने ठहर न सके।"

महादेव जी ने अर्जुन को 'पाशुपत' और 'ब्रह्मशिरा' नाम के दो अमोघ अस्त्र दिए और उनके प्रयोग की विधि भी बताई। इसके बाद महादेव पार्वती-सहित वहाँ से अन्तर्धान हो गए।

अर्जुन की तपस्या जारी रही। उसने यम, वरुण आदि से भी अनेक दिव्य-अस्त्र प्राप्त किए। इसके बाद एक दिन इन्द्र का सारथि मातलि रथ लेकर अर्जुन के पास आया और बोला कि "आपको इन्द्रदेव ने स्वर्ग में बुलाया है।" अर्जुन इन्द्र के रथ पर सवार होकर स्वर्ग को चल दिया। इन्द्रदेव ने स्वर्ग में अर्जुन का स्वागत किया। इन्द्र ने राक्षसों के विरुद्ध युद्ध में अर्जुन से सहायता माँगी। अर्जुन ने युद्ध में अपने तीखे बाणों से राक्षसों को मार भगाया। इससे देवराज इन्द्र अर्जुन पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अर्जुन को बहुत-से अमोघ अस्त्र-शस्त्र प्रदान किए। अर्जुन पाँच वर्ष स्वर्ग में रहा।

युधिष्ठिर आदि अन्य पाण्डव अर्जुन के तपस्या करने चले जाने पर तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़े। वे गन्धमादन पर्वत-शिखर पर पहुँचे। अर्जुन भी भाइयों के पास लौट आया।

यहाँ से पाँचों पाण्डव द्वैतवन में पहुँचे। गर्मी और बरसात यहाँ बिताकर सर्दियों में वे काम्यक वन में जा पहुँचे। यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलने आए।

□

उधर हस्तिनापुर में कौरवों ने सोचा कि अरा जंगल में जाकर पाण्डवों की बुरी दशा देखकर अपना मन बहलाएँ और उनका मज़ाक उड़ाएँ। अन्धे राजा धृतराष्ट्र से उन्होंने कहा कि हम शिकार खेलने जाएँगे।

दुर्योधन, कर्ण, दु:शासन और शकुनि मंत्रियों सहित बहुत-सी सेना लेकर द्वैतवन में, जहाँ उन दिनों पाण्डव थे, जा पहुँचे।

द्वैतवन में एक मानसरोवर था। गन्धर्व लोग इस सरोवर में जल-विहार करते थे। दुर्योधन ने इसी सरोवर के किनारे पड़ाव डालने की आज्ञा दी। गन्धर्वों ने दुर्योधन के लोगों को वहाँ डेरा डालने से रोका। घमण्डी दुर्योधन के कर्मचारी भी घमण्डी थे। उन्होंने गन्धर्वों की बात नहीं मानी। तब गन्धर्वों ने उनको पीटा। पिटे हुए सैनिक दुर्योधन के पास पहुँचे। दुर्योधन ने गन्धर्वों पर आक्रमण कर दिया। गन्धर्वों की मार से दुर्योधन को अकेला छोड़कर बाकी सारे कौरव भाग खड़े हुए। दुर्योधन को गन्धर्वों ने बन्दी बना लिया। दुर्योधन के मन्त्री इस बात से बड़े दुखी हुए कि दुर्योधन के भाई उसे अकेला छोड़कर भाग गए। वे मन्त्रिगण सहायता के लिए पाण्डवों के पास पहुँचे। जब पाण्डवों को पता लगा तो भीम बड़ा प्रसन्न हुआ। पर युधिष्ठिर ने कहा, "अगर किसी तीसरे पक्ष से लड़ना है तो हम कौरव और पाण्डव एक सौ पाँच हैं। इसलिए जाओ और दुर्योधन की सहायता करो।"

युधिष्ठिर की आज्ञा पर भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव दुर्योधन को छुड़ाने चले। पाण्डवों के सामने गन्धर्व टिक नहीं सके। तब पाण्डव गन्धर्वों के राजा चित्रसेन के पास पहुँचे। उसी के पास दुर्योधन बन्दी था। पाण्डवों को देखकर दुर्योधन रोने लगा। चित्रसेन और अर्जुन की मित्रता थी।

अर्जुन ने कहा, "मित्र ! जो हुआ, सो हुआ। आप इनका अपराध क्षमा करके इन्हें छोड़ दें।"

चित्रसेन ने दुर्योधन को युधिष्ठिर के सामने ले-जाकर छोड़ दिया।

अज्ञातवास

पाण्डवों के वनवास के बारह वर्ष पूरे हो चले। तेरहवाँ वर्ष अज्ञातवास का था। सबने सोच-विचारकर निश्चय किया कि अज्ञातवास का एक वर्ष विराट् नगर में बिताना चाहिए।

यह सोचकर श्मशान के पास खड़े एक सेमल वृक्ष की ऊँची शाखा में अर्जुन ने सब शस्त्रास्त्रों को छिपाकर बाँध दिया।

सबसे पहले युधिष्ठिर राजा विराट् की सभा में गए। उन्होंने कहा कि "मैं महाराज युधिष्ठिर का मित्र कंक नामक ब्राह्मण हूँ। मैं चौपड़ खेलने में बड़ा चतुर हूँ। जब पाण्डवों को वनवास मिला तो मुझपर भी विपत्ति आ पड़ी। यदि आप मुझे आश्रय दें तो बड़ी कृपा होगी।" विराट्-नरेश को भी चौपड़ का खेल प्रिय था। उन्होंने कंक को अपना मित्र मानकर राज-सभा में रख लिया।

अब रसोइया बना भीम राजा के सामने उपस्थित हुआ। बोला, "महाराज ! मेरा नाम वल्लभ है। मैं रसोइये का काम खूब जानता हूँ। मैं महाराज युधिष्ठिर के यहाँ यही काम करता था। इसके अतिरिक्त मुझे पहलवानी का भी शौक है।"

राजा ने वल्लभ को अपना प्रधान रसोइया नियुक्त कर दिया।

उधर देवी द्रौपदी फटे-पुराने कपड़े पहने हुए महल के पास घूमने लगी। पहरेदारों ने इस रूपवती स्त्री को निर्धनता की हालत में देखा तो कारण पूछने लगे।

द्रौपदी बोली, "मैं विपत्ति की मारी हुई हूँ। मैं रानियों का शृङ्गार करना जानती हूँ। कहीं काम मिल जाता तो मेरे दिन कट जाते। मेरा नाम सैरन्ध्री है।"

विराट् की रानी सुदेष्णा छत पर खड़ी द्रौपदी की बातें सुन रही थी। उसने दासी को भेजकर द्रौपदी को शृङ्गार करने की नौकरी पर रख लिया।

अर्जुन 'बृहन्नला' नाम रखकर राजकुमारी उत्तरा को संगीत सिखानेवाला शिक्षक बन गया। नकुल ने अपने को ग्वाला बताकर गोशाला में नौकरी कर ली और सहदेव पशुपालक बनकर राजा विराट् की अश्वशाला में घोड़ों की देखरेख पर नियुक्त हो गया।

त्रिगर्त की पराजय

विराट् नगर में भीमसेन ने राजा के साले दुष्ट कीचक को मार डाला था। यह बात चारों ओर फैल गई थी। जिस समय हस्तिनापुर में कीचक के मारे जाने का समाचार पहुँचा, उस समय त्रिगर्त प्रदेश का राजा सुशर्मा वहीं था। सुशर्मा को विराट् के साथ पुरानी शत्रुता थी। उसने सोचा, कीचक के मर जाने से विराट् की स्थिति बिगड़ गई होगी। इसलिए पुराने वैर का बदला लेने के लिए यह समय अच्छा है। उसने राजा विराट् पर आक्रमण करने का निश्चय किया। दुर्योधन ने भी अपने मित्र सुशर्मा की सहायता करने का निश्चय किया। दूसरे ही दिन राजा सुशर्मा की सेना आक्रमण करने निकल पड़ी। कौरव भी साथ हो लिए।

एक दिन राजा को सूचना मिली कि त्रिगर्त के सैनिक ग्वालों को मार-पीटकर एक हजार गौओं को भगाकर ले-जा रहे हैं। राजा विराट् की सेना भी युद्ध करने निकल पड़ी। सेना की

बागडोर स्वयं राजा विराट् ने सँभाली। युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव भी सेना के साथ गए। दोनों सेनाओं में जमकर लड़ाई हुई। अन्त में विराट् की सेना हार गई। सुशर्मा ने राजा विराट् को बन्दी बना लिया। यह देख राजा युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने भीम, नकुल और सहदेव को आज्ञा दी कि राजा विराट् को शत्रु से छुड़ाकर लाओ।

तीनों भाइयों ने सुशर्मा के चंगुल से विराट् को छुड़ा लिया और सुशर्मा को बन्दी बना लिया। अन्त में सुशर्मा क्षमा माँगकर छूटा।

त्रिगर्त और विराट् की सेनाओं में युद्ध चल ही रहा था कि उधर कौरवों ने दूसरी ओर से जाकर विराट् नगर में उपद्रव मचाना शुरू कर दिया। उन्होंने विराट् की गौओं पर अधिकार कर लिया। उस समय राजा विराट् का पुत्र 'उत्तर' नगर का राज-काज सँभाले हुए था। ग्वालों ने कौरवों के उपद्रव की बात कुमार उत्तर को बताई।

राजकुमार मारे डर के भागकर रनिवास में जा छिपा। जब रनिवास की स्त्रियों ने उससे वहाँ आने का कारण पूछा तो बोला, "क्या करूँ, मेरे पास कोई अच्छा सारथि नहीं है। नहीं तो मैं दुर्योधन और कर्ण को धूल चटा देता।"

अर्जुन कुछ दूर संगीत का अभ्यास करा रहा था। उसने द्रौपदी को संकेत किया।

द्रौपदी ने राजकुमार उत्तर के पास जाकर कहा, "राजकुमार जी, ये जो राजकुमारी को संगीत सिखाते हैं न, ये सारथि का काम भी खूब जानते हैं। मैंने इन्हें अर्जुन से यह काम सीखते देखा है। आप उनसे कहिए तो वे आपके सारथि बन जाएँगे।"

राजकुमारी उत्तरा ने अर्जुन को अपने भाई का सारथि बनने के लिए कहा तो अर्जुन ने स्वीकार कर लिया। अर्जुन को सारथि

थे वस्त्र लाकर पहनने के लिए दिए गए। कुमार उत्तर कवच आदि पहनकर रथ पर बैठ गया।

उत्तर के कहने से अर्जुन ने रथ को कौरवों की ओर हाँका। किन्तु जब उत्तर ने कौरवों की विशाल सेना देखी तो उसके छक्के छूट गए। वह पैदल ही पीछे को भागने लगा।

अर्जुन ने भी दौड़कर उसे पकड़ लिया और रथ की ओर लाने लगा। अब उत्तर गिड़गिड़ाने लगा।

अर्जुन ने उत्तर को कहा, "देखो, यदि तुम्हें लड़ने में डर लगता है तो तुम रथ हाँको और मैं लड़ता हूँ।"

मरता क्या न करता! उत्तर ने रथ हाँकना स्वीकार कर लिया। तब तो अर्जुन स्वयं ही रथ को हाँक श्मशान में ले गया। वहाँ सेमल के पेड़ पर रखे हुए अपने शस्त्रास्त्र उतारे। उन शस्त्रास्त्रों को देखकर राजकुमार उत्तर भौंचक्का रह गया।

उधर अर्जुन के प्रसिद्ध गाण्डीव धनुष की टंकार सुनकर कौरवों के कान खड़े हो गए। वे सोचने लगे कि अर्जुन यहाँ कहाँ से आ गया?

जब दुर्योधन ने रथ पर बैठे अर्जुन को देखा तो सन्देह दूर हो गया। वह भागकर भीष्म जी के पास गया और बोला, "देखिए, अर्जुन को हमने खोज लिया है। वह अज्ञातवास पूरा किए बिना पहचाना गया है। अब पाण्डवों को फिर बारह वर्ष का वनवास काटना होगा।"

यह सुनकर भीष्म जी ने गिनती करके कहा, "नहीं दुर्योधन, वे बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूरा कर चुके हैं। यही नहीं, कुछ महीने और भी बीत गए हैं।"

युद्ध प्रारम्भ हुआ। अर्जुन ने दो बाण गुरु द्रोणाचार्य के चरणों में फेंककर उन्हें प्रणाम किया और राजकुमार उत्तर को कहा कि "रथ को उस ओर ले चलो जहाँ दुर्योधन और गाएँ

हैं। उत्तर ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया। अर्जुन की बाण-वर्षा से कौरव-सेना के पाँव उखड़ने लगे।

कौरव-सेना को भागते देख कर्ण आगे बढ़ा। अर्जुन से दो-दो हाथ करने की इच्छा उसकी बड़ी पुरानी थी। वह अर्जुन को कुछ नहीं गिनता था। कर्ण ने अर्जुन को नीचा दिखाने का बहुत प्रयत्न किया, पर उसकी एक न चली। उल्टे अर्जुन के बाणों से कर्ण का सारा शरीर छलनी बन गया और उसने अर्जुन को पीठ दिखा दी। इसके बाद कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, बड़े-बड़े महारथी अर्जुन से भिड़े, पर कोई भी टिक न सका। अब तो कौरव-सेना में घबराहट की लहर फैल गई। अश्वत्थामा, भीष्म पितामह, दुःशासन, दुर्योधन सभी आए और मुँह की खाकर पीछे हट गए। फिर अर्जुन ने शत्रुसेना पर सम्मोहन नामक अस्त्र का प्रयोग किया जिससे सारी सेना मूर्च्छित-सी होकर गिर पड़ी। तब अर्जुन ने उत्तर को कहा कि द्रोण और भीष्म को छोड़कर बाकी प्रमुख वीरों के वस्त्र उतार लाओ।

कुमार उत्तर अनेक वीरों के वस्त्र उतार लाया। उधर अर्जुन ने गायों को नगर की ओर हाँक दिया। अर्जुन का रथ विराट्-नगर को लौट चला।

मूर्च्छा टूटने पर कौरव-सेना बड़ी लज्जित हुई और मुँह लटकाए हस्तिनापुर की ओर लौट चली।

पाण्डव प्रकट हो गए

अगले दिन प्रातः ही द्रौपदी-सहित पाँचों पाण्डव राजोचित वस्त्र और आभूषण पहनकर विराट् की राजसभा में जा पहुँचे। इस समय राजसभा में और कोई नहीं था। सभी भाइयों ने महाराज युधिष्ठिर को विराट् के राजसिंहासन पर बिठा दिया, स्वयं उनके पीछे जाकर खड़े हो गए। तभी वहाँ राजा विराट्

आ गए। जब उन्होंने कंक को राजसिंहासन पर बैठे देखा तो चकित रह गए। उन्होंने पूछा, "कंक! तुम हमारे राजसिंहासन पर कैसे बैठ गए? और यह राजाओं जैसे कपड़े कहाँ से पहन लिए?"

पास खड़े अर्जुन ने हँसकर उत्तर दिया, "ये महाराज युधिष्ठिर हैं। ये तो इन्द्र तक के सिंहासन पर बैठ सकते हैं।"

विराट् ने आश्चर्य से पूछा, "यदि ये युधिष्ठिर हैं तो अन्य पाण्डव और द्रौपदी कहाँ हैं?"

अर्जुन ने जब सबके उन्हीं के राजमहल में वेश बदलकर रहने की बात बताई तो राजा विराट् डर गए। उन्होंने युधिष्ठिर से अपने दुर्व्यवहार के लिए क्षमा माँगी।

महाराज युधिष्ठिर ने कहा, "राजा विराट्! आपके यहाँ अपने अज्ञातवास के दिन बिताने में बड़ी सुविधा रही। जब आप जानते ही नहीं थे कि हम पाण्डव हैं तो क्षमा माँगने की क्या आवश्यकता है!"

राजा विराट् ने कहा, "महाराज! जो हो गया, सो हो गया। आपके साथ पहले भी हमारा सम्बन्ध रहा है। आपसी सम्बन्ध को स्थायी बनाने के लिए मेरा आपसे निवेदन है कि वीर अर्जुन कुमारी उत्तरा से विवाह स्वीकार करें।"

अर्जुन ने कहा, "मैंने उत्तरा को संगीत की शिक्षा दी है। मैं उसका गुरु हूँ। गुरु तो पिता के समान होता है। हाँ, यदि आप चाहें तो मेरे पुत्र अभिमन्यु के साथ उसका विवाह कर दीजिए।"

राजा विराट् ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। विराट् ने दहेज में कई गाँव और धन-रत्न दिए। कई दिनों तक इस विवाह की धूमधाम रही।

विचार-सभा

विवाह में आए हुए सम्बन्धी, मित्र और राजा अभी गए नहीं थे कि एक दिन विराट् के सभा-भवन में सभी इकट्ठे हुए। इस बात पर विचार होने लगा कि पाण्डवों को अपना राज्य वापस कैसे मिले ?

भगवान् श्रीकृष्ण ने बात शुरू की, "आप सब जानते हैं कि धूर्त शकुनि ने किस तरह जुए में हराकर धर्मात्मा पाण्डवों का राज्य छीना है। यही नहीं, पाण्डवों को वनवास का दुःख भी भोगना पड़ा। पाण्डवों का राज्य छल से छीना गया था। उसे पुनः प्राप्त करने के लिए बल से या बातचीत द्वारा दखल होना चाहिए।"

श्रीकृष्ण की बात सुनकर बलराम बोले, "मेरे विचार में दुर्योधन के पास दूत भेजा जाना चाहिए। वह दूत उनसे पाण्डवों का आधा राज्य लौटाने की बात कहे। बात यह है कि दोष दुर्योधन का ही नहीं है। युधिष्ठिर भी अपराधी हैं। उनके जुए में हारने से सब-कुछ गया है।"

सात्यकि ने बलराम की बात का विरोध किया। उसका कहना था कि माँगने से कुछ नहीं मिलता; बल से मिलता है। लड़ाई करके अपना राज्य वापस लेना चाहिए।

अन्त में निश्चय हुआ कि महाराज द्रुपद इस काम को सँभालें। एक ओर तो सभी राजा-महाराजाओं के पास दूत भेजकर उन्हें अपने पक्ष में किया जाए, दूसरी ओर दुर्योधन के पास दूत भेजकर शान्तिपूर्ण ढंग से आधा राज्य वापस माँगा जाए। यदि शान्ति से काम न बने तो युद्ध द्वारा राज्य प्राप्त किया जाए।

राजा द्रुपद और विराट् पाण्डवों के पक्ष में युद्ध की तैयारी

करने लगे। राजा द्रुपद ने अपने पुरोहित को दूत बनाकर दुर्योधन के पास भेजा। पुरोहित हस्तिनापुर गया और अनेक दूत राजाओं के पास गए ताकि युद्ध के लिए सहायता प्राप्त की जा सके। दुर्योधन ने भी समझ लिया कि समझौता न होने से युद्ध जरूर होगा। उसने भी सहायता प्राप्त करने के लिए अपने दूत दौड़ाए।

और राजाओं के पास तो पाण्डवों ने दूत भेज दिए, पर अर्जुन ने श्रीकृष्ण के पास कोई दूत न भेजकर स्वयं जाने का निश्चय किया। अर्जुन द्वारका को चल पड़े। जब दुर्योधन को पता लगा तो वह भी स्वयं श्रीकृष्ण के पास द्वारका गया।

संयोग की बात कि दोनों ने एक ही समय श्रीकृष्ण के महलों में प्रवेश किया। श्रीकृष्ण जी उस समय सोए हुए थे। दुर्योधन श्रीकृष्ण के पलंग के सिरहाने की ओर जा बैठा और अर्जुन पैताने की ओर। जब श्रीकृष्ण जागे तो उनकी दृष्टि अर्जुन पर पड़ी। वे अर्जुन से बातें करने लगे। फिर उन्होंने दुर्योधन को देखा। कुशल-समाचार पूछने के बाद आने का उद्देश्य पूछा तो दुर्योधन ने कहा कि "पाण्डवों के विरुद्ध युद्ध में आपकी सहायता प्राप्त करने आया हूँ। आपके पास भी मैं पहले पहुँचा हूँ और अर्जुन बाद में। इससे पहले सहायता प्राप्त करने का अधिकार मेरा है।"

श्रीकृष्ण बोले, "आप ठीक ही कह रहे हैं पर मैंने तो पहले अर्जुन को देखा है। इसलिए पहले अर्जुन का अधिकार है। मैं अपनी सहायता को दो भागों में बाँट देता हूँ। एक भाग में होगी मेरी सारी नारायणी सेना, और दूसरे भाग में मैं अकेला। मैं अस्त्र लेकर लड़ूँगा भी नहीं।"

अर्जुन ने कहा, "महाराज! मुझे तो आपकी आवश्यकता है। मैं केवल आपको चाहता हूँ।"

अर्जुन की माँग सुनकर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे डर था कि कहीं अर्जुन ने नारायणी सेना माँग ली तो वह अकेले श्रीकृष्ण को लेकर क्या करेगा? प्रकट में दुर्योधन बोला, "महाराज! मैं नारायणी सेना ही लूँगा।"

इसके बाद दुर्योधन बलराम जी को अपने पक्ष में करने के लिए कहने गया। पर उन्होंने किसी का पक्ष लेना स्वीकार नहीं किया।

मद्र देश के राजा नकुल-सहदेव के सगे मामा शल्य ने इनसे सब हाल सुना तो वह अपनी सेना लेकर अपने भानजे पाण्डवों की सहायता करने चल पड़ा। दुर्योधन ने उसको अपने पक्ष में करने के लिए एक चाल चली। उसने मार्ग में उनके लिए सब प्रकार की सुविधाएँ जुटा दीं। शल्य समझा कि यह प्रबन्ध युधिष्ठिर की ओर से किया गया है।

जब शल्य को दुर्योधन ने बताया कि ये सारी सुविधाएँ जुटाने का काम युधिष्ठिर ने नहीं, उसने किया है तो शल्य ने दुर्योधन से वर माँगने को कहा। दुर्योधन ने उनसे वर माँगा कि आप हमारे सेनापति बनिए। शल्य ने स्वीकार कर लिया।

शल्य ने जब युधिष्ठिर को बताया कि उन्होंने कौरवों का सेनापति बनना स्वीकार कर लिया है तो युधिष्ठिर बोले कि "आपको दुर्योधन ने छला है। फिर भी आपने जो वचन दिया है, उसका पालन अवश्य कीजिए। हमारी तो बस इतनी ही प्रार्थना है कि यदि आपको कर्ण का सारथि बनाया गया तो आप ऐसा यत्न करें जिससे उसका उत्साह ठंडा पड़ जाए। आप अर्जुन के बल-पौरुष की प्रशंसा और कर्ण की निन्दा करके ऐसा कर सकते हैं।" शल्य ने यह बात मान ली।

पाण्डवों के पक्ष में बड़ी-बड़ी सेनाएँ साथ लेकर आनेवालों में सात्यकि, चेदिराज, धृष्टकेतु, जरासन्ध का पुत्र सहदेव, महा-

राजा द्रुपद और विराट् प्रमुख थे। पाण्डवों के पक्ष में लड़नेवाली सेना की संख्या सात अक्षौहिणी थी।

कौरवों के पक्ष में लड़नेवाली सेनाएँ ग्यारह अक्षौहिणी थीं। भगदत्त, भूरिश्रवा, भोजराज शल्य, कृतवर्मा और जयद्रथ कौरवों के प्रमुख सहायक थे।

सन्धि का प्रस्ताव

द्रुपद ने सन्धि के लिए अपने पुरोहित को दुर्योधन के पास भेजा था। उन्होंने पाण्डवों का सन्धि-प्रस्ताव राज-सभा के सामने रखा। भीष्म पितामह ने प्रस्ताव का समर्थन किया। कर्ण ने सन्धि का विरोध किया। अन्त में धृतराष्ट्र ने संजय को पाण्डवों से ऐसी सन्धि करने को कहा जिससे आनेवाला विनाशकारी युद्ध टाला जा सके।

संजय ने उपप्लव्य नगर में पहुँचकर महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया और कुशल-मंगल पूछने के बाद संजय ने उन्हें महाराज धृतराष्ट्र का सन्देश पाण्डवों को सुनाया कि धर्मात्मा युधिष्ठिर के लिए यह उचित नहीं है कि राज्य के लोभ में विनाशकारी युद्ध छेड़ा जाए।

इस पर भीमसेन को क्रोध आ गया। पर युधिष्ठिर ने उसे शान्त करते हुए कहा, "यदि हमें केवल इन्द्रप्रस्थ दे दिया जाए तो सन्धि हो सकती है। फिर भी हम श्रीकृष्ण को मध्यस्थ मानने के लिए तैयार हैं। वे जो भी निर्णय करेंगे, वह हमें मान्य होगा।"

श्रीकृष्ण बोले, "संजय, आप दुर्योधन को समझाइए कि वह भाइयों का हिस्सा उन्हें दे दे। मैं भी युद्ध को टालने के लिए अन्तिम प्रयत्न करूँगा।"

संजय हस्तिनापुर लौट गए। उन्होंने युधिष्ठिर का उत्तर राजसभा को बता दिया। पर दुर्योधन ने कहा कि "मैं बिना

युद्ध के पाण्डवों को सूई की नोक जितनी भूमि भी नहीं दूंगा।" इसलिए सन्धि नहीं हो सकी।

युद्ध का प्रारम्भ

कौरवों और पाण्डवों ने युद्ध की तैयारी प्रारम्भ कर दी। सेनाएँ सजने लगीं। कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध होना तय हुआ। पाण्डवों की सेनाएँ वहाँ जा पहुँचीं और मोर्चे सँभाल लिए। कौरवों की सेनाएँ भी पहुँचने लगीं और मोर्चाबन्दी करने लगीं। दुर्योधन ने भीष्म जी को समस्त सेनाओं का सेनापति बनाया। उन्होंने कहा कि "मैं इस शर्त पर बन सकता हूँ कि पाँचों पाण्डवों को नहीं मारूँगा।" दुर्योधन ने शर्त स्वीकार कर ली। भीष्म के सेनापति बनने से कर्ण को बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा कि "जब तक भीष्म सेनापति रहेंगे, मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा।"

पाण्डवों की समस्त सेना का सेनापति अर्जुन बना। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के कहने से उसका रथ दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कर दिया। अर्जुन ने तब देखा कि शत्रु-पक्ष में हमारे साथ जो लोग लड़ने के लिए आये हैं, वे भी हमारे सम्बन्धी ही हैं। कौरव तो पाण्डवों के भाई ही थे। गुरु द्रोणाचार्य दोनों के गुरु थे। अर्जुन बोला, "अपने सगे-सम्बन्धियों को मारकर राज्य प्राप्त करने से तो बिना राज्य के ही अच्छे।" उसने लड़ने से इन्कार कर दिया।

तब भगवान श्रीकृष्ण ने उसे गीता का उपदेश दिया। गीता का उपदेश सुनकर अर्जुन अपना कर्त्तव्य समझकर युद्ध करने के लिए फिर तैयार हो गया।

युद्ध के पहले दिन भीमसेन ने कौरव-सेना को खूब छकाया। अभिमन्यु ने अपने तीखे बाणों से भीष्म को व्यथित कर दिया।

दूसरे दिन सेनापति भीष्म और सेनापति अर्जुन में खूब

ठनी। कौरव-सेना को पिटते देखकर कुछ देर पहले ही भीष्म ने युद्ध बन्द करने की घोषणा कर दी।

तीसरे दिन अर्जुन के बाणों की मार से कौरव-सेना में भगदड़ मच गई। दुर्योधन मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। भीष्म ने भी अपने पक्ष की हार होते देखकर अर्जुन पर भीषण हमला बोल दिया। भीष्म ने श्रीकृष्ण को हथियार उठाने के लिए विवश कर दिया। श्रीकृष्ण रथ का पहिया उठाकर भीष्म पर मारने दौड़ पड़े। बात यह थी कि अर्जुन भीष्म पितामह का बड़ा सम्मान करता था और उनपर प्रहार करते समय संकोच कर जाता था। श्रीकृष्ण ने उसे समझाकर सावधान किया तो वह पूरे वेग से लड़ने लगा।

चौथे दिन अर्जुन का भीष्म के साथ सामना हुआ। शल्य आदि कौरव-पक्ष के पाँच वीरों के साथ अभिमन्यु भिड़ा रहा। आज भीम ने शल्य को और दुर्योधन ने भीम को घायल करके मूर्च्छित कर दिया।

पाँचवें दिन फिर भीष्म और भीम का सामना हुआ। भीम की सहायता के लिए अर्जुन आगे बढ़ा। द्रोणाचार्य ने सात्यकि को बन्दी बना लिया, पर भीम ने आकर छुड़ा लिया। भीष्म, द्रोणाचार्य और शल्य ने मिलकर भीमसेन को घेर लिया, पर अभिमन्यु अपने भाइयों-सहित चाचा भीम की सहायता के लिए आ गया। उधर शिखण्डी ने भीष्म पर बाण-वर्षा कर डाली। भीष्मजी की प्रतिज्ञा थी कि वह शिखण्डी के ऊपर शस्त्र नहीं उठाएँगे। पर द्रोणाचार्य ने शिखण्डी को भगा दिया। आज के युद्ध में अकेले अर्जुन ने शत्रु-पक्ष के पच्चीस हजार महारथियों का सफाया कर दिया।

छठे दिन की लड़ाई में मोर्चा भीमसेन और धृष्टद्युम्न के हाथ रहा।

सातवें दिन द्रोणाचार्य के हाथों द्रुपद का पुत्र मारा गया

और राजा विराट् ने पीठ दिखा दी। उधर दुर्योधन के कई भाई भी मारे गए।

आठवें दिन का युद्ध बड़ा भयंकर था। भीष्म काल बने पाण्डव-सेना का विनाश कर रहे थे।

नवें दिन अभिमन्यु ने ऐसा भयंकर आक्रमण किया कि कौरव सेना 'त्राहि-त्राहि' कर उठी। पाण्डव-सेना का भी भारी विनाश हुआ।

दसवें दिन पाण्डवों ने निश्चय किया कि भीष्म पितामह के रहते जीतना कठिन है। इसलिए आज उन्हें समाप्त करने की युक्ति सोची गई। पाण्डवों ने द्रुपद के पुत्र शिखण्डी को भीष्म-पितामह से लड़ने के लिए भेजा। उसे सामने देखते ही भीष्म ने लड़ना छोड़ दिया, क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा थी कि शिखण्डी पर प्रहार नहीं करेंगे। अर्जुन ने शिखण्डी की आड़ में खड़े होकर भीष्म को तीरों से बींध डाला। सूर्यास्त से कुछ पहले ही भीष्म गिर पड़े। उनके गिरते ही कौरव सेना में हाहाकार मच गया।

पाण्डव-पक्ष में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। दोनों पक्षों के प्रमुख लोग भीष्मजी के पास आए। वे तो सबके पूज्य थे। उनका सिर लटक रहा था। सिरहाना माँगने पर अर्जुन ने तीन बाण इस ढंग से मारे कि उनका लटकता सिर उनपर टिक गया। भीष्म शर-शय्या पर सोए हुए थे। उन्हें अभी प्राण नहीं छोड़ने थे। इसलिए उनकी सुरक्षा की व्यवस्था कर दी गई।

भीष्म ने पीने के लिए पानी माँगा तो अर्जुन ने धरती में बाण मारकर पानी की धारा प्रकट की, जिसका जल पीकर भीष्म पितामह ने अपनी प्यास शान्त की।

भीष्म के शरशय्या पर पड़ जाने से कौरव-सेना की बागडोर द्रोणाचार्य ने सँभाली। दुर्योधन ने द्रोण से कहा कि "आप युधिष्ठिर को जीता पकड़ लें तो समझिए कि युद्ध जीत लिया।"

द्रोणाचार्य बोले, "अर्जुन के युद्ध-भूमि में रहते युधिष्ठिर को कोई भी बन्दी नहीं बना सकता। यदि तुम लोग अर्जुन को दूसरी ओर ले जाओ तो बात बन सकती है।"

यह सुनकर संसप्तकों और त्रिगर्तों के राजा सुशर्मा ने कहा, "मैं अर्जुन को युद्ध-भूमि से दूर ले जाऊँगा।"

ग्यारहवें दिन द्रोण के बाणों से पाण्डव-सेना गिरने लगी। इस विनाश को देखकर युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ने द्रोण पर आक्रमण कर दिया। अर्जुन के सामने कौरव-सेना टिक नहीं सकी। बड़े-बड़े महारथियों में घमासान युद्ध होने लगा। इस भीषण युद्ध में पाण्डवों का पलड़ा भारी हो गया। इसी बीच द्रोण ने अपने वचन को पूरा करने के लिए युधिष्ठिर पर आक्रमण कर दिया। वे युधिष्ठिर को पकड़ना चाहते थे। पाण्डव-पक्ष में घबराहट फैल गई। युधिष्ठिर को खतरे में देखकर अर्जुन ने ऐसी बाण-वर्षा की कि अँधेरा छा गया। द्रोण युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सके।

बारहवें दिन युद्ध प्रारम्भ होते ही संसप्तकों ने अर्जुन को ललकारा तो वह उन्हें खदेड़ने चल पड़ा। इस तरह उन्होंने अर्जुन को उलझाए रखा।

तेरहवें दिन दुर्योधन ने भीम पर आक्रमण कर दिया। राजा भगदत्त दुर्योधन की सहायता करने लगा। भगदत्त के मतवाले हाथी ने भीमसेन को अपनी सूँड में लपेट लिया, पर किसी तरह भीमसेन छूट गए।

उधर अर्जुन सुशर्मा को गिराकर और उसके भाइयों को मारकर भगदत्त से लड़ने आ पहुँचा। अर्जुन ने भगदत्त और उसके हाथी को मार गिरा दिया। द्रोण अब भी युधिष्ठिर को पकड़ने का प्रयास कर रहे थे। युधिष्ठिर की रक्षा सत्यजित् कर रहा था। जब द्रोण ने उसे मार डाला तो युधिष्ठिर वहाँ से

खिसककर चले गये। आज भी आचार्य द्रोण युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सके।

अभिमन्यु-वध

दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को कहा कि "आपने युधिष्ठिर को पकड़ने का वादा किया था, पर आप उसे पूरा नहीं कर सके।"

इस बात को सुनकर द्रोणाचार्य बड़े लज्जित हुए। अपनी झेंप मिटाने के लिए उन्होंने चक्रव्यूह की रचना कर डाली।

अभिमन्यु चक्रव्यूह के भीतर घुसना जानता था, किन्तु बाहर निकलना नहीं। युधिष्ठिर ने कहा, "हम तुम्हारे पीछे-पीछे चक्रव्यूह में घुस आयेंगे।"

अभिमन्यु चक्रव्यूह में घुस गया, किन्तु जयद्रथ ने और किसी पाण्डव वीर को घुसने नहीं दिया। अभिमन्यु अकेला रह गया। फिर भी उसने भयंकर युद्ध किया और अन्त में कौरव महारथियों ने उस अकेले वीर को घेरकर मार डाला। वीर अभिमन्यु की मृत्यु की सूचना मिलते ही पाण्डवों में गहरा शोक छा गया। जब सांझ को अर्जुन त्रिगर्तों को मारकर श्रीकृष्ण के साथ लौटा तो पता लगा कि कौरव वीरों ने छल-बल द्वारा निहत्थे अभिमन्यु को मार डाला है। अभिमन्यु को अन्यायपूर्वक मारने में जयद्रथ ने सबसे बढ़कर भाग लिया था। अर्जुन को इस बात का पता लगा तो उसने प्रतिज्ञा की कि "कल सूर्यास्त से पहले यदि जयद्रथ को नहीं मारूँगा तो स्वत: आग में जल मरूँगा।"

जयद्रथ-वध

अर्जुन की प्रतिज्ञा की खबर जब कौरवों को पहुँची तो वे जयद्रथ को बचाने के उपाय सोचने लगे। जयद्रथ तो पोला ही पड़ गया। जयद्रथ को लगा कि अन्त-समय आ गया।

चौदहवें दिन कौरवों ने शकटव्यूह बनाकर जयद्रथ को उसके भीतर छिपा दिया। कौरवों ने सोचा कि अर्जुन जयद्रथ को मार नहीं सकेगा और स्वयं जल मरेगा। इस तरह अर्जुन के जल मरने से बाकी पाण्डवों को युद्ध में जीतना आसान हो जाएगा।

शकटव्यूह के द्वार पर आचार्य द्रोण स्वयं खड़े थे। पाण्डवों ने एक-साथ द्रोणाचार्य पर आक्रमण करके व्यूह को तोड़ डाला। अब अर्जुन घोर युद्ध करता हुआ जयद्रथ की ओर बढ़ने लगा।

अर्जुन ने देखा कि साँझ हो चली और जयद्रथ मारा नहीं गया। कौरवों की प्रसन्नता का तो ठिकाना नहीं था। अर्जुन भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए जल मरने की तैयारी करने लगा।

सूर्य अस्त हुआ जानकर जयद्रथ भी अर्जुन को जलकर मरता देखने आ गया।

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा, "अर्जुन! अब क्या देख रहे हो? तुम्हारा शत्रु सामने है। अभी इसका सिर काट डालो। अभी सूर्यास्त नहीं हुआ।"

अर्जुन ने ऐसा ही किया। इतने में सूर्य का बिम्ब जो छिप गया लगता था, सबको दिखाई दिया।

पन्द्रहवें दिन फिर भयंकर युद्ध छिड़ गया। आचार्य द्रोण ने द्रुपद और विराट का वध कर डाला। धृष्टद्युम्न ने प्रण किया कि "आज मैं द्रोणाचार्य को अवश्य मार डालूँगा।"

अर्जुन द्रोणाचार्य से भयंकर युद्ध कर रहा था, पर गुरु को मार डालने में उसे सदा ही संकोच होता था। कृष्ण जानते थे कि द्रोण के रहते कौरवों को नहीं जीता जा सकता।

इधर पाण्डवों ने द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा के मरने का समाचार फैला दिया जिससे द्रोण ने शस्त्र रख दिए। पुत्रशोक

के कारण वे आगे नहीं लड़ सके। इस अवसर का लाभ उठाकर धृष्टद्युम्न ने अपने प्रण को पूरा करने के लिए द्रोण का सिर काट डाला। वास्तव में अश्वत्थामा के मरने की खबर झूठी थी। उसका उद्देश्य द्रोण को हतोत्साह करना था। द्रोणाचार्य के मरते ही कौरवों का उत्साह ठंडा पड़ गया। पिता द्रोणाचार्य को अन्यायपूर्वक मारा गया जानकर अश्वत्थामा का क्रोध भड़क उठा। अश्वत्थामा ने पाण्डवों की सेना में भगदड़ मचा दी। तब अर्जुन ने उसका सामना किया। फिर भी अपने दिव्य-अस्त्रों से अश्वत्थामा ने पाण्डव-सेना का भयंकर विनाश कर डाला।

सोलहवें दिन कर्ण सेनापति बना। भीम और अश्वत्थामा की भिड़न्त में दोनों ही वीर घायल होकर गिर पड़े। फिर अर्जुन ने अश्वत्थामा को बाणों से बींध डाला और पीठ दिखाने पर विवश कर दिया। कर्ण और नकुल में सामना हुआ तो नकुल को मुँह की खानी पड़ी। क्योंकि कर्ण ने प्रतिज्ञा की थी कि "मैं अर्जुन के अतिरिक्त किसी पाण्डव के प्राण नहीं लूँगा", इसलिए नकुल को जीवित छोड़ दिया। युधिष्ठिर और दुर्योधन में युद्ध छिड़ा तो दुर्योधन मूच्छित होकर गिर पड़ा। भीमसेन ने युधिष्ठिर को दुर्योधन की हत्या से रोक दिया, क्योंकि भीमसेन ने दुर्योधन को स्वयं मारने की प्रतिज्ञा की थी।

सत्रहवें दिन कर्ण यह प्रतिज्ञा करके रणभूमि में उतरा कि आज अर्जुन को मार डालूँगा। कर्ण का सारथि था शल्य। कर्ण ने शल्य से कहा, "मैं आज अर्जुन को रणभूमि में मार गिराऊँगा। आज तुम मेरे रणकौशल को देखना।"

शल्य ने कहा, "कर्ण! तुम व्यर्थ ही डींग हाँक रहे हो। अर्जुन को मारना तुम्हारे वश की बात नहीं है। तुम पहले कई बार अर्जुन से पिट चुके हो, फिर भी निर्लज्जतापूर्वक शान बघार रहे हो।"

शल्य की फटकार से कर्ण को बड़ा क्रोध आया। बात यह थी कि कर्ण के उत्साह को ठंडा करने के लिए शल्य उसकी निन्दा और अर्जुन की बड़ाई कर रहा था।

कर्ण पाण्डव-सेना को बुरी तरह घायल कर रहा था। उधर अर्जुन ने त्रिगर्तों के राजा सुशर्मा को मार गिराया। कर्ण ने युधिष्ठिर को रणक्षेत्र से भागने पर विवश कर दिया।

आज युद्ध-भूमि में भीमसेन अपनी गदा से शत्रुओं को पीसते जा रहे थे। कर्ण ने भी शिखण्डी को मार डाला। भीम जब कर्ण की ओर चला तो बीच में दुःशासन ने उसे ललकारा। फिर तो दोनों में जमकर लड़ाई हुई। दुःशासन ने भीम को बाणों से घायल करके मूर्च्छित कर डाला। फिर उठकर भीम ने गदा का एक ऐसा वार दुःशासन पर किया कि वह रथ से दूर जा पड़ा और उसका सिर फट गया। भीम को याद आया कि इसी दुःशासन ने सभा में द्रौपदी का अपमान किया था। उसने उसकी छाती में तलवार भोंक दी और जब रक्त का फव्वारा बहने लगा तो भीम ने चुल्लू में भर उसका खून पी लिया। इस तरह दुःशासन का रक्तपान करने की प्रतिज्ञा भीम ने पूरी की।

कर्ण और अर्जुन एक-दूसरे को मारने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करने लगे। कभी एक का पलड़ा भारी हो जाता तो कभी दूसरे का। एक-दूसरे पर तरह-तरह के अस्त्रों और उनके प्रतिकारक अस्त्रों का प्रयोग करते रहे। अन्त में अर्जुन ने एक ऐसा अमोघ बाण कर्ण के ऊपर चलाया कि कर्ण मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। शल्य ने इस समय चाहा कि रथ को भगा ले जाऊँ जिससे कर्ण की जान बचे, पर रथ का पहिया ऐसा धँसा कि प्रयत्न करने पर भी नहीं निकला। रथ को धँसा देखकर अर्जुन ने बाण चलाना रोक दिया। कृष्ण ने अर्जुन को डाँट दिया। बोले, "यही तो अवसर है। शत्रु संकट में है। जल्दी से बाण चलाओ!"

अब तो अर्जुन ने एक विशेष बाण चलाकर कर्ण का सिर काट डाला। कर्ण को मरा देखकर भीम प्रसन्नता से नाच उठा। पाण्डव-पक्ष में खुशी के बाजे बजने लगे और कौरव-पक्ष में निराशा की लहर दौड़ गई। कर्ण जैसा वीर कौरव-पक्ष में कोई दूसरा नहीं था। दुर्योधन के लगभग सारे भाई मारे जा चुके थे। हाँ, शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि कुछ वीर अभी बचे हुए थे।

कर्ण जैसे वीर-वीर योद्धा की मृत्यु से दुर्योधन की तो कमर ही टूट गई। आज का युद्ध समाप्त हुआ।

युद्ध के अन्तिम और अठारहवें दिन शल्य कौरवों का सेनापति बना।

आज शल्य ने बड़ा पराक्रम दिखाया। पाण्डव-सेना के पैर उखड़ने लगे। भीम और शल्य में आज देर तक गदायुद्ध होता रहा, पर दोनों में से कोई भी पीछे नहीं हटा। फिर युधिष्ठिर ने शल्य से युद्ध प्रारम्भ किया और शल्य को मार गिराया। कौरव-सेना में भगदड़ मच गई। अन्त में दुर्योधन भी युद्ध से भाग खड़ा हुआ और एक तालाब में जा छिपा। कौरव-पक्ष के कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा उसके पास पहुँचे और अब भी पाण्डवों को हराने की बात करने लगे। दुर्योधन बहुत थका हुआ था। उसने रात-भर विश्राम करके दूसरे दिन युद्ध करने की बात मान ली। पर कुछ शिकारियों ने पाण्डवों को दुर्योधन के तालाब में छिपने की बात बता दी।

पाण्डव दुर्योधन के पास आए और उसे युद्ध के लिए ललकारा। अन्त में दुर्योधन और भीमसेन में भयंकर गदा-युद्ध हुआ। भीम ने गदा-युद्ध के नियम का उल्लंघन करके दुर्योधन की टाँगों पर गदा दे मारी जिससे वह गिर पड़ा और मर गया।

जब कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा को दुर्योधन के मरने

का समाचार मिला तो वे अत्यन्त दुःखी हुए। अब उनमें से अश्वत्थामा सेनापति बना। वह आधी रात को पाण्डवों के शिविर में जा घुसा और धृष्टद्युम्न को सोते से जगाकर मार डाला। फिर उसने सोए हुए द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को मार डाला। फिर कृतवर्मा ने पाण्डवों के शिविर में आग लगा दी।

अश्वत्थामा को मारने के लिए सवेरे भीमसेन निकल पड़ा। श्रीकृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिर भी उसकी सहायता को चले। वह उन्हें व्यास के आश्रम में मिला। अश्वत्थामा ने एक ऐसी शक्ति चलाई जिससे सारे पाण्डव जल मरते, पर अर्जुन ने उसको रोकनेवाली शक्ति चला दी। दोनों शक्तियाँ आपस में टकरा गईं और भयंकर आग उगलने लगीं। व्यास और नारद आदि के कहने पर अर्जुन ने तो अपनी शक्ति वापस ले ली, पर अश्वत्थामा शक्ति को वापस लेना जानता ही नहीं था। इसलिए वह शक्ति अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भस्थ शिशु को जाकर लगी।

धृतराष्ट्र और गान्धारी के सौ पुत्र मारे गए। शोक के कारण कौरव-पक्ष में हाहाकार मचा हुआ था। पाँचों पाण्डव यद्यपि जीवित बच गए थे, किन्तु उनकी सन्तानों में से भी कोई नहीं बचा था।

धर्मराज युधिष्ठिर यद्यपि विजयी होकर राज्य के स्वामी बन गए थे, पर इतने वीरों का खून बहाकर मिला हुआ राज्य उन्हें जरा भी अच्छा नहीं लगा। नारद जी के समझाने-बुझाने से कर्तव्य समझकर युधिष्ठिर ने राज्य स्वीकार कर लिया। युधिष्ठिर ने धर्मराज्य की स्थापना की। शरशैया पर पड़े भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को धर्मनीति और राजनीति के सम्बन्ध में अनेक उपदेश दिए।

अश्वत्थामा की शक्ति के प्रहार से उत्तरा का गर्भस्थ शिशु

मरा हुआ जन्मा, किन्तु योगेश्वर श्रीकृष्ण ने उसमें अपनी योगशक्ति द्वारा प्राणों का संचार कर दिया।

अश्वमेध-यज्ञ

व्यास जी के कहने से युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, विदुर और संजय तप करने के लिए वन को चले गए।

उधर यदुवंश का भी नाश हो गया। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अपनी लीला पूरी कर ली। वे एक व्याध के तीर से मारे गए।

यादवों के नाश की बात सुनकर अर्जुन द्वारका गया और विधवा यादव-पत्नियों को हस्तिनापुर ले आया। मार्ग में डाकुओं ने स्त्रियों को छीन लिया। अर्जुन ने गाण्डीव धनुष तानां, पर सब बेकार। उन्हें लगा कि अब मैं पहलेवाला अर्जुन नहीं हूँ।

अन्त में राज्य अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को देकर द्रौपदी-सहित पाँचों पाण्डव हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों को चले गए और गलकर मरते गए।